Journal of Research and Development
A Multidisciplinary International Level Referred and Double Blind Peer Reviewed, Open Access
ISSN : 2230-9578 | Website: https://jrdrvb.org Volume-18, Issue-4(A)| April-2026

Original Article

मौर्यकालीन में धार्मिक जीवन का प्रभाव

डॉ० कमलेश चौधरी
सामाजिक विज्ञान संकाय (इतिहास)
ल० ना० मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

Manuscript ID:
JRD -2026-180418
ISSN: 2230-9578
Volume 18
Issue 4(A)
Pp 77-79
April- 2026
Submitted: 23 Mar. 2026
Revised: 30 Mar. 2026
Accepted: 14 Apr. 2026
Published: 30 April. 2026

सारांश :–

सम्पुर्ण विश्व में नगर वासियों की अपेक्षा ग्राम वासियों की आस्था धर्म की ओर अधिक होती है। कृषि प्रधान ग्रामीण अर्थव्यवस्था बहुत कुछ प्रकृति की विभिन्न घटनाओं से प्रभावित थी अतः इन घटनाओं के पीछे जिन देवी देवताओं की कल्पना की गयी थी उनकी ओर आकर्षित होना स्वभाविक था। ग्राम्य जीवन में कृषि के विशेष महत्व को देखते हुये अन्नपूर्णा धरतीमाता की पूजा प्राचीन काल से होती रही है।

भूमिका :–

कौटिल्य ने भारत के प्राचीन धर्म को त्रयी धर्म कहा है। उनके अनुसार यह धर्म जनता के लिये उपकारक है क्योकि यह सब वर्णों और आश्रमों के लोगों को अपने–अपने स्वधर्म में स्थिर रखता है। सामवेद, ऋग्वेद, यजुर्वेद, को 'त्रयी' की संज्ञा दी गयी थी। इनमें प्रतिपादित धर्म ही 'त्रयी धर्म' था। आचार्य कौटिल्य के अनुसार ब्राह्मण का धर्म अध्ययन अध्यापन, यज्ञ–याजन, दान लेना व देना उपकारक है। क्षत्रिय का धर्म पढ़ना, यज्ञ करना, दान देना, शस्त्रबल से जीविकोपार्जन करना और प्राणियों की रक्षा करना है। वैश्य का धर्म पढ़ना, यज्ञ करना, दान देना, कृषि कार्य, पशुपालन और व्यापार करना है। इसी प्रकार शूद्र का अपना धर्म है वह सवर्णों की सेवा करे, खेती, पशुपालन, व्यापार करे, शिल्प, गायन, वादन एवं चारण भाट का कार्य करे। ग्रहस्थ अपनी परम्परा के अनुकूल आचरण करे, सगोत्र तथा असगोत्र समाज में विवाह करे, देव, अतिथि, ब्राह्मण, पितर, भृत्यजनों को देकर अंत में भोजन करे। ब्रह्मचारी का धर्म है– वह नियमित स्वाध्याय करे, अग्निहोत्र रचे, नित्य स्नान करे, भिक्षाटन करे, जीवनपर्यनत गुरू के समीप रहे। वानप्रस्थी का धर्म है– ब्रहमचर्यपूर्वक रहना, भूमि पर शयन करना, देव, पितर, अभ्यागतों की सेवा, पूजन करना, वन के कंद मूल पर निर्वाह करना। इसी प्रकार सन्यासी का धर्म है– जितेन्द्रिय होना, निश्क्रिन्चन बने रहना, समाज में न रहना, एकाकी रहना, स्वल्पाहार लेना। आचार्य चाणक्य ने समाज के धर्म का वर्णन करते हुये यह बताया है कि प्रत्येक वर्ण और प्रत्येक आश्रम का धर्म है कि वह किसी भी प्रकार की हिंसा न करे, सत्य बोले, पवित्र बना रहे, किसी से ईष्या न करे तथा क्षमाशील व दयावान बना रहे। धर्म का पालन करने से मोक्ष प्राप्त होता है अन्यथा वर्ण व कर्म में संकरता आ जाती है जिससे लोक का नाश हो जाता है। अतः राजा का कर्तव्य है कि प्रजा को धर्म व कर्म मार्ग से भ्रष्ट न होने दे।

कौटिल्य का विचार है कि विधि–पालन से समाज सुगठित दीर्घजीवी एवं गतिशील रहता है। समाज द्वारा स्वीकृत आचारगत अनुशासन का उपदेश विधि है तथा वर्जनाएँ निषेध है। कौटिल्य ने एक ओर वर्णाश्रम धर्म द्वारा पूरे समाज की शुचिता, सदाचार संस्कार को ध्यान में रखा है तथा दूसरी ओर संस्कार धर्म से व्यक्ति को सदाचार, नित्यकर्म की शुचिता, आतिथ्य सत्कार, पंच महायज्ञ, तप, दान आदि के विधि निषेधों द्वारा समाज एवं व्यक्ति दोनों को नियंत्रित किया है, जिससे सामाजिक एवं व्यक्तिगत जीवन में प्रतिस्पर्धा समाप्त हो जाती है। कौटिल्य के धार्मिक प्रत्यय की संकल्पना व्यक्ति एवं समाज के सुख सम्पन्नता में निहित है जो धर्म पर आधारित है।

धर्म के पालन में यथार्थ जीवन में कभी–कभी आपत्ति उत्पन्न हो जाती है। जिससे सामान्य स्वीकृत नियम पालन में असुविधा होती है। इन परिस्थितियों का भी धर्मशास्त्रविदों ने सामाजिक दृष्टि से विधान किया है।

आचार्य कौटिल्य के कथन से ज्ञात होता है कि मौर्य युग में वैदिक व गृह अनुष्ठानों का प्राधान्य था। मैगस्थनीज के अनुसार दार्शनिकों की संख्या यद्यपि कम थी पर वे समाज में उच्च माने जाते थे। लोग उन्ही से यज्ञ करवाते थे। इन दार्शनिकों से मैगस्थनीज का तात्पर्य पुरोहित वर्ग से था। अपने धार्मिक संस्कारों में कौटिल्य ने केवल शुचिता, सदाचार, सत्यभाषण और संस्कार को ही स्थान नहीं दिया है वरन् देवी, देवताओं, उनकी मूर्तियों, धार्मिक क्रिया कलापों, यज्ञों, तंत्र–मंत्र एवं जादू–टोने का भी विस्तृत वर्णन किया है जो अधोदृष्टव्य है।

अग्नि– अर्थशास्त्र में 'अग्निरक्षा' के लिये पूर्णिमा आदि पर्व तिथियों पर बलि, होम और स्वस्ति वचन द्वारा 'अग्नि' की पूजा की जाती थी। शत्रु दुर्ग में आग लगाने की दृष्टि से 'अग्नि देवता' को मंत्रों द्वारा आहुति दी जाती थी। पुनः कौटिल्य ने उल्लेख किया है कि हवन करने से प्राणी निद्रामग्न हो जाते हैं तथा बंद दरवाजे खुल जाते हैं। इसके लिये कौटिल्य ने 'स्वाहा' शब्द का प्रयोग किया है।

Creative Commons (CC BY-NC-SA 4.0)
This is an open access journal, and articles are distributed under the terms of the Creative Commons Attribution-NonCommercial-ShareAlike 4.0 International Public License, which allows others to remix, tweak, and build upon the work noncommercially, as long as appropriate credit is given and the new creations ae licensed under the idential terms.

Address for correspondence:
डॉ० कमलेश चौधरी सामाजिक विज्ञान संकाय (इतिहास) ल० ना० मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

.How to cite this article:
चोधरी, . कमलेश . (2026). मौर्यकालीन में धार्मिक जीवन का प्रभाव. Journal of research & development, 18(4(A)), 77–79. https://doi.org/10.5281/zenodo.20390102

Quick Response Code:
Website: https://jrdrvb.org/
DOI: 10.5281/zenodo.20390102
OPEN ACCESS

Journal of Research and Development
A Multidisciplinary International Level Referred and Double Blind Peer Reviewed, Open Access
ISSN : 2230-9578 | Website: https://jrdrvb.org Volume-18, Issue-4(A)| April-2026

इन्द्र– कौटिल्य ने इस देवता की तुलना प्रजा का कल्याण करने वाले राजा से की है। इस देवता का नगर द्वारा के बीच स्थापित किये जाने वाले अनेक देवताओं में स्थान था। ऋतुमती स्त्रियां संतान के ऐवर्श्य, विद्या और बुद्धि के निमित्त हविदान कर इस देवता की उपासना करती थी।

कृष्ण–संकर्षण– निद्राग्रस्त करने वाले देवों के अन्तर्गत इस देवता की गणना की जाती थी। ये देवता विषैले पदार्थों का सेवन अति प्रेम से करते थे। संकर्षण बलदेव का संप्रदाय नागपूजा की अनेक विशिष्टताओं पर प्रकाश डालता है। बलदेव प्रतिमाओं और नागमूर्तियों में मूर्तिकला विषय समानताओं के आधार पर वोगेल इस बात पर बल देते है कि बलदेव के पौराणिक चरित्र का विकास किसी नाग देवता के चरित्र से हुआ। संकर्षण यद्यपि वैष्णव देवता के रूप में प्रतिष्ठित थे फिर भी रूद्रशिव संप्रदाय से भी उनका निकट का संबंध दृष्टिगोचर होता है। पन्चरात्र संहिताए संकषर्ण को प्रायः रूद्रशिव के साथ अभिज्ञापित करती है। अपने एक अवतार में रूद्र हलायुद्ध, जो हल को अपने अस्त्र के रूप धारण करता है, अर्थात् संकषर्ण के रूप में विख्यात थे। संकषर्ण की एक विशिष्टता कृषि से उनका संबंध है। भगवान शिव का भी उर्वरता एवं कृषि से घनिष्ट संबन्ध है। उनकी पूजा अधिकांशतः कृषक वर्गों में ही प्रचलित थी। संकषर्ण के विषय में कृषि संबंधी पक्ष पर बहुत अधिक बल दिया जात है। और वे सर्वत्र प्रकृत्या कृषि संबंधी उपकरण, मूसल और हल धारण किए हुए दृष्टिगोचर होते हैं। संकषर्ण नाम का शाब्दिक अर्थ है जोतना या लीक बनाने की क्रिया जो उनके ग्राम्य परिवेश एवं कृषिगत चरित्र को रेखांकित करता है।

जयँत– यह इंद्र का पुत्र था। नगर के मध्य स्थापित देवता में इसका उल्लेख है।

नाग– मौर्य काल में नाग देवता के रूप में पूजित थे। नाग देवता की पूजा करने का विशेष निर्देश कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में दिया है। सर्प भय से बचने हेतु पर्व तिथियों पर नाग देवता की पूजा की निर्देश अर्थशास्त्र में हैं।

ब्रह्मा– कौटिल्य ने इनके लिये, प्रजापति, 'ब्राह्मण', शब्दों का उल्लेख किया है। कौटिल्य के अनुसार नगर द्वार के उत्तर में इस देवता की स्थापना होती है। इनके पूजन से धन–धान्य की वृद्धि होती थी।

यम– यह अपराधियों को दंड देने वाला प्रथा पर प्रत्यक्ष अनुग्रहण करने वाला देवता था। इसकी स्थापना नगर के मुख्य द्वार पर होती थी।

रवि– सूर्य के लिए चाणक्य ने 'रवि', 'सरिता' और सूर्य शब्दों का उल्लेख किया है। इनमें से प्रथम व अन्तिम स्थल पर इस देवता की स्तुति निद्राग्रस्त करने तथा ताला तोड़ने वाले से की गई है।

वरूण– अर्थशास्त्र के अनुसार यह देवता मनोकामना की पूर्ति करते हैं। कौटिल्य के कथनानुसार अदण्डनीय व्यक्ति को दंड देने वाले राजा से दंड स्वरूप लिया गया द्रव्य सर्वप्रथम वरूण देवता के निमित्त जल में छोड़ दिया जाता है। अतः अनुचित दंड वसूल करने पर राजा को जो पाप लगता था उसकी मुक्ति हेतु वरूण की उपासना होती थी।

वैजयन्त– इसकी स्थापना नगर के मध्य होती थी। वाचस्पति गैरोला ने इसे 'इन्द्र' माना है।

वैष्णव– नगर के मध्य स्थापित इस देवता का उल्लेख अर्थशास्त्र में है। लोक में यक्ष, नाग ऐसे ही छोटे देवताओं की पूजा होती थी, उन्हीं के देवता वैष्णव व शिव थे।

शिव– आचार्य चाणक्य के अनुसार नगर के बीच शिव देवता की स्थापना होती थी। नारायण चन्द्र बनर्जी ने इसे 'कल्याण का देवता माना' है।

सेनापत्य– इसकी स्थापना मुख्य द्वार पर होती थी। वाचस्पति ने इसे कुमार नामक देव माना है और इसे पश्चिमी द्वार का देवता बताया है जिससे इन्हें शिव का पुत्र स्वामी कार्तिकेय माना जाता है।

सोम– शत्रु के दुर्ग में आग लगाने तथा उन्हें मोहित करने वाले देवताओं को कौटिल्य ने 'सोम' कहा है।

मादिरा और श्री– इन देवियों की स्थापना नगर के मध्य होती थी। नारायण चन्द्र बनर्जी ने मादिरा को दुर्गा का अवतार तथा श्री को लक्ष्मी का अवतार माना है।

सरस्वती– अर्थशास्त्र के अनुसार नदीरूपा देवी न थी वरन् विद्या और बुद्धि प्रदान करने वाली देवी थी। कौटिल्य ने शत्रुओं को बुद्धि भ्रष्ट करने के अर्थ इस देवी का उल्लेख किया है। कौटिल्य ने नदीरूपी देवियों का भी उल्लेख किया है जिसमें गंगा देवी का विशेष वर्णन है।

वैदिक यज्ञ– आचार्य चाणक्य ने कुछ वैदिक यज्ञों का भी उल्लेख किया है जिनमें अश्वमेध, प्रवग्यार्द्वासन, प्रातस्सवन, वृहस्पतिसवन, मध्यमोदषय, महाकच्छवर्धन, माध्यान्दिन और सत्य प्रमुख है। समस्त यज्ञ, यज्ञ त्रृत्विक और आचार्य आदि के निरीक्षण में सम्पन्न होते थे जिन्हें उचित दक्षिण प्रदान की जाती थी। इनमें से कुछ यज्ञ लम्बी अवधि तक चलते थे।

पशु पूजा– पशु पूजा के अन्तर्गत धेनु, वृषभ, वत्स का उल्लेख है। चाणक्य के अनुसार राजा सम्पूर्ण कार्यो से निवृत्त होकर सवत्स धेनु और वृषभ की परिक्रमा करने के पश्चात् राज–दरबार में प्रविष्ट होता था। इसके अतिरिक्त चूहे की पूजा भी की जाती थी। जंगली पशुओं की भी उपासना का वर्णन कौटिल्य के अर्थशास्त्र में है।

पर्वत पूजा– आचार्य कौटिल्य ने पर्व तिथियों पर पर्वत की उपासना करने की भी सलाह दी है– पर्व सुच पर्वत पूजाः करायेत।

मूर्तिपूजा– मूर्तिपूजा का प्रारम्भ कौटिल्य युग से होने लगा था। पतंजलि ने भी इसका उल्लेख किया है कि मौर्यकाल में लोग द्रव्य हेतु मूर्तियों का निर्माण करते थे। 'कौशमि संहरण' प्रकरण में सर्पों की मूर्ति का स्पष्ट वर्णन है तथा इनकी उपासना पर भी जोर दिया गया है।

चैत्य पूजा– कौटिल्य ने चैत्य पूजा का विशेष महत्व बताया है। इसके लिये मंदिर का भी निर्माण हुआ था। यह पूजा अमावस्या तथा पूर्णिमा के दिन होती थी।

अवैदिक सम्प्रदाय– इसके अन्तर्गत कौटिल्य ने शाक्य, आजीवक, पाखंडियों की चर्चा की है जो आश्रम में नहीं रहते थे।

शाक्य आजीवक– शामशास्त्री इनको बौद्ध अनुयायी मानते हैं। कौटिल्य के अनुसार धार्मिक समारोहों तथा श्राद्ध के अवसर पर शाक्यों को आमंत्रित करना मना था। अतः यह स्पष्ट है कि बौद्ध, जैन भिक्षु घृणा की दृष्टि से देखे जाते थे।

भारतवर्ष में छठवीं शताब्दी ई.पू. में, जैन व बौद्ध दो बड़े परम्परा–विरोधी और सुधारवादी धर्मों का उदय हुआ। जनता में इन धर्मों का प्रचार हुआ जिससे प्रजा वैदिक मार्ग और परम्परा–विरोधी पंथ दो दलों में बँट गयी। महावीर और युद्ध के बाद नाग, नंद और मौर्य वंश के अधिकांश राजाओं ने इन नये पंथों को ग्रहण किया, जो इनके पक्के अनुयायी नहीं थे फिर भी इनसे प्रभावित थे। इन राजाओं ने वैदिक धर्म, आचार तथा नीति का त्याग किया तथा धर्म व राजनीति दोनों क्षेत्रों में नये प्रयोग किये। वैदिक धर्म मानने वालों की समाज में अब बड़ी संख्या थी।

वैदिक मार्गियों के नये प्रयोगों और मार्गो से असंतोष पुराणों और धर्मशास्त्र के ग्रंथों में स्पष्ट दिखाई देता है जहाँ व्रात्य, वृषल, शुद्र, पतित, वर्णसंकर आदि उपाधियों से सुधार वादी राजवंश लांछित किये गये। अशोक के समय में नये आदर्शों का प्रयोग अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया। इससे एशिया के कई देशों में बौद्ध धर्म और नीतिमार्ग का प्रचार अवश्य हुआ, परन्तु मध्य और पश्चिमी एशिया के यवन पर इसी नीति का प्रभाव नहीं पड़ा। इस नीति के फलस्वरूप देश मे राष्ट्रीयता और सैनिक शक्तियाँ शिथिल पड़ गयी। अंतिम मौर्य

Journal of Research and Development
A Multidisciplinary International Level Referred and Double Blind Peer Reviewed, Open Access
ISSN : 2230-9578 | Website: https://jrdrvb.org Volume-18, Issue-4(A)| April-2026

राजे धर्मवादी (पाखंड़ी) विलासी और दुर्बल थे। वे मगध साम्राज्य को आन्तरिक विद्रोहों से बचाने और विदेशी आक्रमणों से देश की रक्षा करने में बिल्कुल असमर्थ थे। इस परिस्थिति में मौर्यवंश के विरोध में धार्मिक और राजनीतिक दोहरी प्रतिक्रिया हुई।

इस प्रतिक्रिया के नेता अधिकतर वैदिक मार्गी ब्राह्मण थे। मौर्य वंश के पतन के बाद लगातार शुंग, कण्व और अन्ध्र सातवाहन तीन ब्राह्मण राजवंश हुए जिन्होंने वैदिक धर्म, वर्णाश्रम–व्यवस्था, शत्रुद्वेशी राष्ट्रीय राजनीति और परम्परा के अनुरूप जीवन के पुनरूत्थाान का प्रयास किया। शुंगों के नेतृव्य में ब्राह्मणों ने पुनः वैदिक मर्यादा को स्थापित कर वेदवाद की पताका फहराई। सदियों से खोई हुई अपनी धार्मिक परम्परा को पुनः प्राप्त कर यज्ञों, संस्कारों का ऐसा रूप बना दिया, जो कालान्तर में हिन्दू संस्कृति का मुख्य अंग बन गया। यद्यपि ब्राह्मणों द्वारा वैदिक धर्म का पुर्नजागरण किया तो गया पर बौद्ध व जैन धर्मो ने व्यक्ति के मन तथा सामाजिक जीवन पर जो अमिट छाप छोड़ी थी वह पूर्णरूप से मिटायी न जा सकी। अतः वैदिक धर्म को समेटने के प्रयास ने नये धार्मिक जन–आंदोलन का रूप धारण किया। व्यक्तिवाद का प्रचार बढ़ा। लोक जीवन को आप्लावित करने के लिये भक्ति सरल उपाय था। अतः विभिन्न देवी, देवताओं उनकी मूर्तियों, धार्मिक कर्मकण्डों के साथ एक नये पैराण्कि धर्म का उदय हुआ। इस युग की यह सबसे उल्लेखनीय घटना है। धनमूति के अयोध्या अभिलेख से ज्ञात होता है कि पुष्यमित्र ने वैदिक यज्ञों को पुनः स्थापित करने हेतु दो अश्वमेध यज्ञों को सम्पन्न किया। हरिवंश पुराण के अनुसार राजा जनमेजय के बाद पुष्यमित्र ने अश्वमेध का पुनरोहण किया।

निष्कर्ष :–

महाभाष्य से ज्ञात होता है कि पुष्यमित्र के अश्वमेध के प्रधान आचार्य स्वयं पतंजलि ही थे। वैदिक देवताओं के नये रूप यज्ञों की जगह मंदिर में पूजा तथा अवतारों की उपासना में लक्षित इस नये पौराणिक धर्म की प्रथम अभिव्यक्ति अश्वमेध पुनरोहरण की धार्मिक क्रांति के रूप में हुई थी। वैदिक धर्म का नया रूप जन साधारण की वस्तु न थी जबकि बौद्ध धर्म जनसाधारण के लिए था। बौद्ध धर्म आचार प्रधान था, परमेश्वर के लिये उसमें जगह न थी, देवता उसमें स्वयं उपासक थे। जनसाधारण ने बुद्ध की शिक्षाओं को मान तो लिया था पर ईश्वर के बिना उनका काम चलना कठिन था। अतः समाज में निम्न वर्गों तथा अनार्य जातियों में प्रचलित जड़ पूजाओं तथा स्थानीय देवी देवताओं को लेकर किसी न किसी वैदिक देवता के साथ उन्हें मिला दिया गया। फलतः वनचरों के देवता के भयंकर देवी–देवता काली और रूद्र के रूप बन गये। उस समय जितने देवता पूजे जाते थे, वे शिव, विष्णु, सूर्य, स्कंद आदि भिन्न–भिन्न शक्तियों के सूचक के रूप बन गये। वैदिक धर्म के साथ भागवत धर्म की भी शुंगकाल में विशेष उन्नति हुई। वास्तव में भागवत धर्म भी वैदिक मतावलम्बियों का ही धर्म था, जिसमें यज्ञ के स्थान पर भगवान की मूर्ति व भक्ति प्रधान थी। महाभारत और अन्य पश्चात् वर्ती ग्रंथों से ज्ञात होता है कि वासुदेव कृष्ण और बलदेव का नाम सुधार की उस लहर के साथ जुड़ा था, जो सर्वप्रथम वसुचैधोंपरिचर के समय यज्ञों की हिंसा, कर्मकाण्ड और सूखे तप के विरूद्ध उठी थी। शुंगकाल में अनेक देवताओं की पूजा प्रचलित थी। मेगस्थनीज ने लिखा है कि शूरसेनों में हेराक्लेस की पूजा विशेष रूप से प्रचलित थी। घोसुण्डी अभिलेख में संकर्षण और वासुदेव के लिए पूजा–शिला का उल्लेख मिलता है। इससे स्पष्ट होता है कि इस समय संकर्षण और वासुदेव मुख्य देवता माने जाते थे। डॉ. वर्थ का मत है कि मानवी देवता कृष्ण जो कि एक प्रचलित लोक–देवता थे, विष्णु के स्थान पर स्थापित हो गये थे। अतः हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते है कि विष्णु को प्रभुत्व प्राप्ति और कृष्ण के साथ उनके समीकरण इन दोनों में सम्बन्ध है।

संदर्भ ग्रंथ सूची –

1. अग्रवाल पृथ्वी कुमारः प्राचीन भारतीय कला एवं वास्तु, वाराणसी, 2002
2. अग्रवाल वासुदेव शरणः भारतीय कला, वाराणसी, 2004
3. उपाध्याय वासुदेवः प्राचीन भारतीय स्तूप गुहा एवं मन्दिर पटना 1972 प्राचीन भारतीय मूर्ति विज्ञान, पटना, 1970
4. उपाध्याय भगवत शरणः भारतीय कला का इतिहास, नई दिल्ली, 1981
5. उपाध्याय डॉ. उदय नारायण व तिवारी गौतमः भारतीय स्थापत्य एवं कला, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2001
6. श्रीवास्तव डॉ. ए. एल.: भारतीय कला–प्रतीक, इलाहाबाद, 1997: भारतीय कला सम्पदा, उमेश प्रकाशन इलाहाबाद, 2001
7. गुप्त परमेश्वरी लालः भारतीय वास्तुकला, वाराणसी, वि. 2003: गुप्त साम्राज्य, वाराणसी, 1970
8. गुप्ता बी. एल.: मध्यकालीन भारत, जयपुर पब्लिशिंग हाऊस, बीकानेर, ईस्वी 1971
9. शोध पत्र, पत्रिकायें पृथ्वी कुमार अग्रवालः मौर्यकला, राजबली पाण्डेय स्मृति ग्रन्थ, कला निधि प्रकाशन, देव रिया, 1976
10. शास्त्री के. ऐ. नीलकण्ठः नन्द–मौर्य–युगीन भारत, दिल्ली, 1987: द हिस्टी ऑफ साउथ इण्डिया, आक्सफोर्ड, 1966